हुसैन (अ०) और हिन्दुस्तान

सैय्यदुल उलमा सैय्यद अली नक़ी नक़वी ताबा सराह
अनुवादक– जनाब सै0 मुहिब्बुल हसन रिज़वी 'समर' हल्लौरी

उस जाति या उस संस्था के विषय में कुछ कहना ही नहीं है जो ''जिस की लाठी उसकी भैंस'' की कहावत को ठीक समझती हो। निस्सन्देह! ऐसी संस्था के लिए कर्बला का जिहाद (धर्मसंग्राम) और कर्बला के शहीद का उत्तम बलिदान एवं उनकी अमिट सफलता और विजय केवल हार ही है। और यही कारण है कि कर्बला घटना की याद उन्हें अपनी ओर आकर्षित नहीं करती। किन्तु ये लोग भी खुल कर हज़रत इमाम हुसैन(अ0) के इस महान कार्य के ख़िलाफ मुँह नहीं खोल सकते और यही हुसैन (अ0) की सच्चाई का बड़ा सबूत है। यद्यपि वे मायाबन्दी हुसैन (अ0) के ख़िलाफ मुँह खोलना भी चाहते हों तो उनमें इतना साहस ही नहीं और अगर साहस भी है तो वे जानते हैं कि उन्हें इसमें सफलता न मिल सकेगी। फिर भी वे चोरी छुपे हुसैन (अ0) के मातम को मिटाने के के जो प्रयास करते हैं, प्रायः वह दिखाई देते रहते हैं। और उनके यह प्रयास उनके दिल का हाल बताने के लिये बहुत हैं। राजनीति के क्षेत्र में पश्चिमी राष्ट्र केवल ताक़त को सही समझने को उचित जानते हैं और उनमें कोई भी ऐसा नहीं है जो उसके ख़िलाफ हो। यह और बात है कि कोई हिटलर बनकर तलवार और तोपों से अपनी शक्ति को दिखाए और कोई विश्व–शान्ति के नाम पर अपनी ताक़त को राजनीति के रंग में रंग कर सामने आए, परन्तु इनमें से हर एक के दिल दिमाग़ पर हिटलरी छाई हुई है। इसीलिये यदि ये आपस में कोई संधि भी करें, तो उस पर टिके नहीं रह सकते और वे विश्वशान्ति के लिये लाभदायी सिद्ध नहीं हो सकती। कहावत है कि ''दो फ़क़ीर एक कमली में सो सकते हैं'' और ''दो बादशाह एक देश में नहीं रह सकते'' चूँकि साइंस के इस युग में जब सभ्यता का सूर्य संसार के कोने कोने को चमकाए हुए हैं, पूरा संसार एक मुल्क की हैसियत रखता है और अब बादशाहों की जगह वर्तमान काल की शक्तियों ने ले ली है इसलिए अब कहावत यह होनी चाहिए कि ''दो हिटलर एक विश्व में नहीं रह सकते'' और फिर इन हिटलरों के बीच यदि कोई संधि भी हो तो वह कै दिन चलने की!

यूरोप जो अपने ईसाई धर्म के साथ–साथ जीवन के हर क्षेत्र में मायावादी हो गया है, किसी ऐसे युद्ध को ध्यान में भी नहीं ला सकता जो आत्मावाद या अध्यात्मिकता पर आधारित हो। यही कारण है कि यूरोप के लेखकों ने जिस ज़ोर के साथ उन मुसलमान विजेताओं का उल्लेख किया है जिन्होंने अपनी तलवार के बल पर देश जीते हैं, उतने ज़ोर के साथ और उतनी महत्त्वता के साथ उन्होंने कभी कर्बला के महाविजयी कारनामों पर ध्यान नहीं दिया, क्योंकि यूरोप के इन

इतिहासकारों के पास वह दृष्टि नहीं है जो हुसैन (अ0) की इस जीत को देख सके, जो उन्होंने बेबसी की हालत में अपने शत्रु यज़ीद पर पाई थी। पूर्वी गोलार्ध में भारत ऐसा देश है जहाँ सदा आध्यात्मवाद की चर्चा रही। और इस देश में पैदा होने वाले सभी धर्मों ने अहिंसा की शिक्षा उस समय दी जब संसार हिंसा का पुजारी बना हुआ था। और इस अहिंसा की दौड़ में हर धर्म अपने को आगे बढ़ाने की कोशिश में लगा रहा। किसी धर्म ने अहिंसा का अर्थ ''मानवहत्या'' से बचना समझा तो किसी ने जानवरों की हत्या से भी रोक दिया और किसी ने अहिंसा की सीमा को इतना बढ़ा दिया कि कीड़े मकोड़ों और ज़हरीले जानवरों को भी मारना पाप समझा।

अब अन्त में गाँधी जी ने जो युद्ध अंग्रेज़ों के ख़िलाफ किया उसका आधार अहिंसा ही था। उन्होंने 'ताक़त को सत्य' के बजाए 'हक़ (सत्य) को ही एक शक्ति' माना और इसी सिद्धान्त को सामने रख कर इस प्रकार अपनी सेना को सत्य की ध्वजा के नींचे इकटठा किया कि अन्त में उनको सफलता प्राप्त हुई। और उन्होंने देश की स्वतंत्रता के सपने को हमारे सामने ला खड़ा किया, जो हमारी आँखों के सामने है। यहाँ तक कि उनकी इस सफलता से प्रभावित होकर अब तो कभी–कभी यूरोप वाले भी सत्य और उसकी शक्ति की चर्चा करने लगे हैं। गाँधी जी की अहिंसा की विचारधारा की सीमाएँ हमारे दृष्टिकोण से कुछ विभिन्न सही फिर भी जिस पर उनकी अहिंसा की नीव है, वह सिद्धान्त बहुत कुछ अहलेबैत (स0) (रसूल स0 के घराने वाले) के इस्लामी सिद्धान्त से मिलता जुलता है, जिस को बहुत खुले ढंग के प्रयोग में लाकर अनुभव की दुनिया में उसके फल का प्रदर्शन करके इमाम हुसैन (अ0) ने संसार को सत्य की शक्ति का बोध कराया था। फिर यह सिद्धान्तों की समता संयोगवश न थी बल्कि गाँधी जी ने खुले शब्दों में प्रायः इस बात को बताया कि उन्होंने कर्बला की घटना का अच्छी प्रकार अध्ययन किया था और उससे प्रभावित हुए थे। और उन्होंने प्रायः कहा कि स्वतंत्रता संग्राम में वह हुसैन (अ0) को अपना आदर्श जानते हैं। इसी लिये नमक सत्याग्रह में जाते समय उन्होंने अपने साथियों की संख्या बहत्तर रखते हुए यह बताया कि वह इस प्रकार हुसैन के नेतृत्व में रहने का सबूत पेश करना चाहते थे। ऐसी दशा में देश के स्वतंत्र होने के बाद केवल भारत ही से ऐसी आशा है कि वह कर्बला के शहीद की स्मृति को फलने–फूलने का अवसर दे। आज से पहले भी हमारे देश का झुकाव सदा हुसैन (अ0) के मातम की ओर रहा है। ग्वालियर का मुहर्रम इस बात को सिद्ध करने के लिये एक ऐतिहासिक सबूत है। हिन्दुओं का हुसैन (अ0) के शोक मनाने में भाग लेना इस वजह से न था कि मुसलमान इस देश में विजयी के रूप में आए और राजा के धर्म का प्रभाव प्रजा पर बहुत पड़ता है। यदि ऐसा होता तो फिर मुसलमानों में प्रचलित त्योहार जैसे ईद, बक़रीद या क़व्वाली आदि से इस देश के निवासियों ने कोई सम्बन्ध क्यों नहीं स्थापित किया। इसलिए कहना पड़ेगा कि जहाँ तक रीति रिवाज का सम्बन्ध है हिन्दू मुसलमानों से प्रभावित नहीं हुए बल्कि मुसलमान ही हिन्दुओं से प्रभावित हुए। शादी विवाह, मरनी करनी को देख लीजिये कि कौन प्रभावित है। फिर हुसैन का

ग़म मनाना ज़ाहिर है कि जो मुसलमानों की जाति विजयी के रूप में भारत में राज्य करने को आई उसने इमाम हुसैन (अ0) के मातम को चलन देने का कोई प्रयास न किया वह बहुधा इससे कोई मुख्य लगाव नहीं रखती थी। ऐसी हालत में इस देश और हिन्दु और हिन्दु समाज में हुसैन (अ0) की याद को बनाये रखने में किसी दबाव या ताक़त से काम नहीं लिया गया, बल्कि देश का स्वभाव उससे अनुकूल था। और यहाँ के प्राचीन सिद्धान्तों ने हुसैन (अ0) को हिन्दुओं में इतना प्रिय बना दिया। इतिहास से पता चलता है कि भारत वर्ष के वह राज्य जो मुसलमानों की आधीन न थे और जो मुसलमानों के शत्रु थे, वहाँ भी प्रेम और श्रद्धा से हुसैन का शोक मनाया जाता था। यह और बात है कि देश में कुछ ऐसे लोग पैदा हो गये जो अपने प्यारे नेता गाँधी जी को भी गोली से उड़ाने में कोई बुराई नहीं समझे, वे यदि इमाम हुसैन (अ0) की स्मृति को मिटाने का प्रयास करें तो कोई अचम्भे की बात नहीं है। परन्तु देश के स्वस्थ वातावरण जिसमें हुसैन (अ0) के मातम का चलन हुआ वह कभी भी हुसैन (अ0) की याद को भारत से मिटाने के प्रयास को सफल न होने देगा।

अब उन बयानों को देखिये जो हमारे देश के ख़ास–ख़ास नेताओं ने दिए। यादगारे हुसैनी सन् 1361 हि0 (इमाम हुसैन अ0 की शहादत होने के 1300 हिजरी साल पूरे होने की याद) के लखनऊ के जलसे के अवसर पर देश के प्रधान मंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू ने कहा था:–

''इस अवसर पर हम अपने मतभेद भूल गये, हमारी दलीलों का मुँह बन्द हो गया और हम सब एक हो गये, हम में आपस में मित्रता स्थापित हो गई क्योंकि एक बड़े वयक्तित्त्व या एक महान कार्य की स्मृति पूरे संसार को एक लड़ी में बाँध देती है और भूतकाल की धुंधली याद भी चौंका देने के लिये काफी है।

आज जब कि हम बड़ी–बड़ी घटनाओं के बीच और संसार के बदलाव की चौखट पर खड़े हैं हमारे लिये यह उचित है कि हम इतिहास के मुख्य घटनाओं की ओर आकर्षित हों और भूतकाल के महान् कार्यों से शक्ति प्राप्त करें।''

ज़ाहिर है कि वे घटनाएँ और समय के बदलाव आज से दस साल पहले सम्भवतः कुछ और हों किन्तु निस्सन्देह आज भी हम उन बड़ी घटनाओं के बीच और इन्क़लाब की चौखट पर उसी प्रकार खड़े हैं जिस प्रकार आज से पहले खड़े थे बल्कि ज़िम्मेवारी के बढ़ जाने के कारण उन घटनाओं का महत्त्व और भी अधिक हो गया है। इसलिये सच्चे दिल ऐसे महान कार्य की स्मृति जो आपस के मतभेद को मिटा सके और विश्व को एक मित्रता के बन्धन में बाँध सके जितनी आवश्यक इस समय है उतनी आवश्यक शायद उस समय न रही हो जब पंडित जी ने अपने मुँह से यह शब्द निकाले थे।

एक दूसरे संदेश में जो पंडित जी ने हुसैन डे कमेटी, बम्बई (मुम्बई) को भेजा था, उसमें लिखा हैः ''इस शहादत में एक ऐसा संदेश है जो समस्त संसार के लिए है। हज़रत हुसैन (अलैहिस्सलाम) ने अपना सब कुछ बलिदान कर

दिया किन्तु एक अन्यायी तथा निर्दयी राज्य के आगे सर न झुकाया। उन्होंने यह नहीं सोचा कि देखने में हमारी शक्ति शत्रु के मुक़ाबले में कम है। इमाम की शक्ति उनके नज़दीक सबसे बड़ी शक्ति थी जो हर अनात्मवाद शक्ति को तुच्छ जानती है। हर जाति हर सम्प्रदाय के लिए वह बलिदान पथ–प्रदर्शन के लिए दीपक का काम करती है।''

अब यह संदेश जिसे पंडित जी ने विश्व व्यापी बताया है, क्या भारत के लिए उसी समय तक आवश्यक था जब तक देश गुलाम था? क्या ज़ालिम के सामने सर न झुकाने की माँग किसी मुख्य वातावरण के अधीन है? वास्तव में, एक शासक के लिए आवश्यक है कि वह एक ज़ालिम के सामने सर झुकाने से बचे, जिस प्रकार राज्यसिंहासन पर बैठे हुए किसी यज़ीद के हाथ में हाथ देने से इन्कार ज़रूरी है, उसी प्रकार गोडसे जैसे लोगों से भी सरकार को न डरने की बड़ी आवश्यकता है।

हमारे स्वतंत्र देश की सरकार से इस समय उसके मित्रों और हमदर्दों को भी ज़ालिम होने की उतनी शिकायत नहीं है, जितनी ज़ालिमों और अत्याचारियों के अत्याचार को छिपाने की है। आक्षय ब्रह्मचारी का मरण ब्रत इसी जुल्म (ज़्यादती) के ख़िलाफ आग्रह का एक प्रदर्शन है। हम जानते हैं कि देश इन अत्याचारियों और हिंसकों को छोड़ देने का कारण उनकी अधिक्ता या उनकी ताक़त से प्रभावित होना ही है किन्तु यदि ईमान अर्थात सत्य को सत्य समझने की शक्ति पर कुछ भी भरोसा किया जाए तो कभी भी ज़ालिम अपनी मनमानी करने की हिम्मत नहीं कर सकता।

आधुनिक भारत में यह घोषणा खुलेआम होने की आवश्यकता है कि ''हर जाति और हर सम्प्रदाय के लिए यह बलिदान पथ–प्रदर्शन में दीपक की हैसियत रखती है।'' भारत की जनता 'ग़ैर मज़हबी' (सेकुलर) होने के बाद भी 'हर जाति और हर सम्प्रदाय' के दायरे से बाहर नहीं हो सकती इसलिए हुसैन (अ0) की कुर्बानी की यादगार इस स्वतंत्र भारतसे उसी प्रकार मनाए जाने की माँग कर सकती है जिस प्रकार एक ऐसे देश से कर सकती है जो अपने को एक जाति और एक सम्प्रदाय का समझता हो।

हमारे देश के गणतंत्र राज्य के राष्ट्रपति बाबू राजेन्द्र प्रसाद ने कहा है कि ''कर्बला की शहादत की घटना मानव इतिहास की वह घटना है जो कभी भुलाई नहीं जा सकती और जो संसार के करोड़ों मर्दों और औरतों के जीवन को प्रभावित करती रहेगी। भारत में इस घटना की स्मृति बड़े पैमाने पर मनाई जाती है जिसमें न केवल मुसलमान भाग लेते हैं बल्कि वे भी जो मुसलमान नहीं हैं बराबर अपनी रुचि का सबूत देते हैं और इसमें भाग लेते हैं।''

यह खुली हुई बात है कि किसी चीज़ के बारे में वास्तविक्ताएँ वातावरण के बदलने से बदला नहीं करतीं। ''कभी भुलाया नहीं जा सकता'', में कभी का शब्द अगर अपने पूरे अर्थ सहित प्रयोग में आया हो तो इसमें तब और अब का अन्तर होना असम्भव सी बात है। करोड़ों मर्दों और औरतों की संख्या यदि किसी धर्म की जनसंख्या

से सम्बन्धित हो तो बात के अन्त में ग़ैर मुस्लिम लोगों की समान दिलचस्पी'' ने एक धर्म की विशेषता को बाक़ी नहीं रखा। इसलिये देश में चाहे कोई भी सरकार स्थापित हो किन्तु वह हुसैन(अ0) की इस स्मृति को साम्प्रदायिक मानकर उससे आँख बचाने और अलग रहने का अधिकार प्राप्त नहीं कर सकती।

अन्त में हम बाबू श्री पुरुषोत्तम दास टंडन के शब्दों की ओर आप की ध्यान–दृष्टि को आकर्षित करना चाहते हैं। चूँकि आपके व्यक्तित्त्व को देश सेवा में काफी महत्त्व प्राप्त है, इसलिए आप के शब्दों पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। आपके विचारों को नहरू जी के विचारों के विरूद्ध माना जाता है। आपको हिन्दू संस्कृति का पुजारी होने के कारण साम्प्रदायिक विचारों का माना जाता है इसलिए आप के विचार जो कर्बला के शहीद हज़रत इमाम हुसैन (अ0) के बारे में हैं वह समझने तथा देखने योग्य हैं।

आपने लखनऊ की हुसैन डे कमेटी को निम्नलिखित संदेश भेजा थाः

''शहादते हुसैनी मेरे लिए सदा एक दुःखद आकर्षणशक्ति अपने अन्दर रखती थी, उस समय जब मैं एक छोटा बालक था। मैं उस महान ऐतिहासिक घटना की याद मनाने के महत्त्व को समझता हूँ। इतने महान बलिदानों से जो कि इमाम हुसैन (अ0) ने प्रस्तुत किए हैं उन्होंने मानवता के स्तर को बहुत ऊँचा कर दिया है। और उनकी स्मृति मनाने और क़ायम (स्थापित) करने के योग्य है।''

टंडन जी के शब्दों में यदि कोई महत्त्व और वास्तविकता है तो केवल उनकी इस स्कीम के होते हुए भी किसी देश में एक ही संस्कृति होनी चाहिए शहादते हुसैन की यादगार को इस उभयनिष्ठ संस्कृति का एक आवश्यक अंग होना चाहिए जिसमें आप पूरे देश को रंगना चाहते हैं। इसलिए कि वह समस्त मानवता को ऊँचा उठाने वाली है और बिना किसी मतभेद के मनाने और स्थापित करने के योग्य है।

टंडन जी का यह कहना है कि हमारे देश की प्राचीन रीतियों और रवाजों तथा सभ्यता को फिर से ज़िन्दा करना चाहिए इस बात का निमंत्रण देता है कि हुसैनी यादगार इस देश में स्थापित रहना चाहिए इसलिए कि इस मुल्क की पुरानी प्रथा है कि निर्दयी तथा हिंसक से घृणा और दुखी के साथ हमदर्दी सहानुभूति।

इन्हीं प्राचीन परम्पराओं का फल यह था कि जिन्हें अरब की भूमि पर शरण न मिलती थी वे भी हिन्दुस्तान आ कर शरण लेने का मन रखते थे। इसलिए इन्हीं पुरानी प्रथाओं के आधार पर कर्बला के शहीद की यादगार का इस देश में स्थापित रखना कांग्रेस सरकार का या जो भी देश की सरकार हो, उसका दायित्व है।